महाभारत में प्रबन्धन के सूत्र एवं वर्तमान प्रासंगिकता

*डॉ. हंसराज शर्मा

महाभारत केवल भारतीय वाङ्मय में ही नहीं अपितु विश्ववाङ्मय में अप्रितम ग्रन्थ है। जगद्व्यापी सारस्वत प्रासाद के सर्वमान्य पुरोधा और संरक्षक कृष्णद्वैपायन वेदव्यास इस ग्रन्थ के रचयिता हैं। महर्षि व्यास द्वारा विरचित अमर आर्षकाव्य महाभारत, भारतीय लौकिक साहित्य में वाल्मीकीय रामायण की परवर्ती द्वितीय किन्तु एक अद्वितीय रचना है। महाभारत में भारतीय संस्कृति का जो भव्य निदर्शन है, वह भला अन्यत्र सुलभ कहाँ? महाभारत में भारतीय जीवन–शैली की समग्र और यथार्थ प्रस्तुति है। इसमें धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियों, परम्पराओं, विचारधाराओं की प्रचुर सामग्री संगृहीत है। यह आकरग्रन्थ है और इसकी मान्यताएं शाश्वत अर्थात् सार्वकालिक और सार्वदेशिक हैं।

महाभारत एक आर्षमहाकाव्य है। काव्य प्रतिभा सम्पन्न लौकिक कवियों की कृतियों से विशिष्ट और पृथक् अभिज्ञान रखने वाले ऋषि–प्रणीत काव्यों की आपकाव्यों की श्रेणी में रखा जाता है। लोक में रहते हुए भी ऋषि अलौकिक दृष्टि से सम्पन्न होते हैं। अर्थ उनकी वाणी का अनुसरण करता है–**ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।** ऋषियों के ज्ञान की गम्भीरता असन्दिग्ध है ही, उनका ज्ञान वर्तमान के साथ ही भूत और भविष्य की प्रतीति से प्रत्यययुक्त भी रहता है। यही कारण है कि उनके द्वारा प्रणीत काव्यों में एक विलक्षण अन्तर्दृष्टि होती है। उन काव्यों में केवल कविदृष्ट वस्तु का ही वर्णन नहीं होता अपितु वे लोककल्याण के उपदेश राशि से भी सम्पन्न होते हैं।

विषय की व्यापकता, आकार की विशालता और लोकप्रियता में यह ग्रन्थ सर्वथा अद्वितीय और अतुलनीय है। ग्रन्थ में उपन्यस्त विषयों का क्षेत्र इतना विस्तृत और वैविध्यपूर्ण है कि महाभारतकार का यह कथन सर्वथा यथार्थ है कि जो इस महाभारत में है, वह अन्यत्र भी है, किन्तु जो यहाँ नहीं है, वह कहीं नहीं है–

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्ववचित्।।

भारतीय वाङ्मय की महनीय परम्परा का वाहक और प्रतिनिधि यह ग्रन्थ अपने सवावषयक महत्त्व के कारण समस्त विश्व में समादत है। महाभारत वह सर्वोषधिमयी अंजनशलाका है जिसे नेत्रों में लगाकर अज्ञजन परमज्ञानदृष्टि हो जाते हैं। वैदिक ज्ञानतत्त्व को महाभारत में इस रीति से प्रस्तुत किया गया है कि वह सर्वमान्य के लिए सुलभ और बोधगम्य हो गया है। महाभारत अध्यात्म और लोकव्यवहार दोनों का मनोरम समन्वय प्रस्तुत करता है।

ज्ञान–विज्ञान की ऐसी कोई शाखा नहीं जिससे सम्बन्धित सामग्री महाभारत में नहीं मिलती। यही कारण है कि इसे विश्वकोश की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। वर्तमान काल में अपने वैशिष्ट्य और महत्त्व के कारण 'प्रबन्धन' एक स्वतन्त्र विषय के रूप में स्थापित हो चुका है जिसकी पढ़ाई के लिए नित नए संस्थान अस्तित्व में आ रहे हैं। प्रश्न उठता है कि क्या प्रबन्धन से सम्बन्धित सामग्री महाभारत में प्राप्त होती है? ग्रन्थ के आलोकन से स्पष्ट है कि प्रबन्धन की शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थी महाभारत का अध्ययन कर अपने प्रबन्ध कौशल में चार चाँद लगा सकते हैं।

आधुनिक काल में प्रबन्ध कौशल का मुख्य बिन्दु श्रेष्ठता की प्राप्ति है। श्रेष्ठता की प्राप्ति, तत्पश्चात् उस स्तर को निरन्तर बनाए रखना, एक बार का कार्य नहीं है, यह सतत प्रक्रिया है, अतः आधुनिक प्रबन्धक प्रबन्धन को एक सतत चलने वाली प्रक्रिया मानते हैं। प्रबन्धन की सफलता से ही बड़े–बड़े उद्यम अपने लक्ष्य की प्राप्ति कर पाते हैं। महाभारत में प्रबन्धन से सम्बन्धित तत्त्व उपलब्ध होते हैं। इस ग्रन्थ में बिखरे हए पुष्पों को बटोरकर पिरो देने से प्रबन्धन की सार्वकालिक, सार्वदेशिक एवं सर्वोपयोगी अवधारणा की स्थापना होगी।

1. प्रबन्धन के लक्ष्य

महाभारत में प्रबन्धन के जो लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं वे आदर्शवादी और व्यवहारवादी हैं। महाभारतीय दृष्टि में प्रबन्धन के जो लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं वे भौतिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार की उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते हैं। ये चार लक्ष्य हैं–

1.1 धर्म

प्रबन्धन का प्रथम लक्ष्य है धर्मानुकूल आचरण करना। नियमबद्ध, संयमित और सात्त्विक जीवन ही धार्मिक जीवन है। वस्तुतः धर्म व्यक्ति के आचरण और व्यवहार की एक संहिता है जो उसके कार्यों को देश, काल और परिस्थिति के अनुसार व्यवस्थित, नियमित और नियन्त्रित करता है तथा उसे स्वस्थ और उज्ज्वल जीवन जीने के लिए ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता है। महाभारत में आचार को धर्म का लक्षण माना गया है तथा आचार से ही धर्म को फलीभूत होने वाला कहा गया है। महर्षि वेदव्यास की दृष्टि में इस विशाल विश्व के विभिन्न अवयवों को एक सूत्र में एक श्रृंखला में बाँधने वाला जो सार्वभौम तत्त्व है, वही धर्म है। यदि धर्म का अस्तित्व इस जगत् में न हो तो यह जगत् कब का विशृंखल होकर छिन्न–भिन्न हो गया होता। अतः महाभारत का वचन है कि महान् फल देने वाले, परन्तु धर्म से विहीन कर्म का सम्पादन मेधावी पुरुष कभी न करें, क्योंकि ऐसा आचरण कथमपि हितकारक नहीं माना जा सकता है

धर्मादपेदं यत्कर्म यद्यपि स्यानलमहाफलम्।
न तत् सेवेत मेधावी न तद्धितमिहोच्यते।।

1.2 अर्थ

प्रबन्धन का दूसरा लक्ष्य है–अर्थसाधन। अर्थ का सम्बन्ध धन–सम्पत्ति से होते हुए भौतिक उपकरण और सुख से भी है। वस्तुतः अर्थ का अभिप्राय उन सभी उपकरणों अथवा भौतिक साधनों से है, जो व्यक्ति को समस्त सांसारिक सुख उपलब्ध कराते हैं तथा तत्सम्बन्धी सभी आवश्यकताओं और साधनों की पूर्ति करते हैं। महाभारत में अर्थ को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। प्रत्येक वस्तु उस पर निर्भर करती है। धन को काम और धर्म का आधार माना गया है। धर्मस्थापन के लिए अर्थ अनिवार्य है क्योंकि इसी से प्राप्त सुविधा द्वारा धार्मिक कृत्य किए जा सकते हैं। अर्थविहीन व्यक्ति को ग्रीष्म की सूखी सरिता के समान माना गया है। यद्यपि अर्थ की श्रेष्ठता स्वीकृत है, तथापि महाभारत की स्पष्ट उद्घोषणा है कि अधार्मिकता और अन्याय से अर्जित भौतिक सुख और धन–सम्पत्ति का फल दुःखद होता है। धर्म को हानि पहुँचाने वाले अर्थ का त्याग श्रेयस्कर है।

1.3 काम

काम का मानव जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति की समस्त कामनाएँ काम के अन्तर्गत आती हैं। परिवार, समाज अथवा व्यवस्था का उत्कर्ष काम द्वारा ही सम्भव है। मन और मस्तिष्क की इच्छाएँ और उनकी तुष्टि कामजन्य ही होती है। सांसारिक आनन्द के मार्ग का अन्वेषण ही काम है। किन्तु इसका अतिरेक महान् दुर्गुण है। काम के

वशीभूत होकर धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। महाभारत में धर्म और अध्यात्म का आवरण देकर काम की गम्भीरता तथा धर्मनिष्ठता बताने की चेष्टा की गई।

1.4 मोक्ष

मोक्ष मानव जीवन का अन्तिम और उच्चतम आदर्श एवं लक्ष्य है। अपनी दुष्प्रवृत्तियों और अज्ञानताओं से रहित होने पर ही ज्ञान की सच्ची अनुभूति होती है और तभी ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। इसके साथ ही अपनी इन्द्रियों, मन और बुद्धि पर नियन्त्रण रखने वाले व्यक्ति को मोक्ष अपने आप मिल जाता है।

2. महाभारत में निरूपित प्रबन्धन के विविध सिद्धान्त

2.1 परामर्श का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्धक को चाहिए कि वह किसी कार्य को आरम्भ करने के पूर्व सभी सम्बन्धित व्यक्तियों से परामर्श की प्रक्रिया पूरी कर ले। इसके पश्चात् समुचित निर्णय लेकर अपने लक्ष्य कि पूर्ति का प्रयास करे। परामर्श ही तत्त्वबोध का मार्ग प्रशस्त करता है। किसके साथ परामर्श किया जानना चाहिए और किसान नहीं, इसका विवेचन महाभारत में प्राप्त होता है। कहा गया है–**मन्त्रयेत् सह विद्वद्भिः** अर्थात् विद्वानों के साथ परामर्श करना चाहिए। कम बुद्धि वालों, देर लगाकर काम कर वालों और खशामदियों के साथ परामर्श नहीं करना चाहिए–अल्पप्रज्ञैः सहमन्त्र न कुर्यान्न दीर्घसूत्रैः रभसश्चारणैश्च।।

जो काम और क्रोध से रहित, ममता और अहंकार से शून्य, उत्तम व्रत का पालन करने वाले तथा धर्म मर्यादा को स्थिर रखने वाले हैं, उन्हीं महापुरुषों का संग करना चाहिए और उनसे ही अपना सन्देह पूछना चाहिए

कामक्रोधव्यपेता ये निर्ममा निरहंकृताः।

सुव्रताः स्थिरमर्यादास्तानुपास्व च पृच्छ च।।

2.2 निष्पक्षता का सिद्धान्त

प्रबन्धक का दायित्व है कि वह पूर्वाग्रह और पक्षपातरहित होकर अपना कार्य सम्पादित करे। यह कार्य उसे विचार और व्यवहार दोनों तलों पर करना चाहिए। उसे समत्वभाव से कार्य करते हुए कर्तव्यपथ पर आगे बढ़ना चाहिए। इस सन्दर्भ में भगवान् श्रीकृष्ण के वचन उल्लेखनीय हैं। उनका स्पष्ट उद्घोष है कि मैं सब भूतों में समान रूप से स्थित हूँ। न मेरा कोई अप्रिय है और न प्रिय है–**समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।** गीता में ही कहा गया है

समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति।।

अर्थात् जो मनुष्य सब प्राणियों में समभाव से रहने वाले अविनाशी परमेश्वर को देखता है, वही सत्य को देखता है।

गीता का पुनः कथन है–**बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।** अर्थात् समत्व बुद्धि युक्त पुरुष पुण्य व पाप दोनों को इस लोक में ही त्याग देता है। महाभारत का उद्घोष है कि राजा (प्रबन्धक) को चाहिए कि वह अपनी प्रजा (कर्मचारियों) को पुत्रों और पौत्रों की भाँति स्नेहदृष्टि से देखे परन्तु जब न्याय करने का अवसर प्राप्त हो, तब उसे स्नेहवश पक्षपात नहीं करना चाहिए–

यथा पुत्रास्तथा पौत्रा द्रष्टव्यास्ते न संशयः।
भक्तिश्चैषां न कर्तव्या व्यवहारे प्रदर्शिते।।

2.3 परस्पर सम्बद्धता का सिद्धान्त

प्रबन्धक को चाहिए कि वह परस्परभाव से कार्य करे। जिस प्रकार शब्द और अर्थ परस्पर साथ देते हुए उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार प्रबन्धक को चाहिए कि वह कर्मचारियों के साथ परस्परभाव से कार्य करते हुए उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हो। श्रीमद्भगवद्गीता में इस ओर सङ्केत किया गया है। कतिपय उद्धरण आगे दिए जा रहे हैं–

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

अर्थात् हे अर्जुन, जो मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उन्हें उसी प्रकार अपनाता हूँ।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मा ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

अर्थात् जो अनन्यभावयुक्त मनुष्य मेरा चिन्तन करते हुए अच्छी प्रकार से भजते हैं, मेरे साथ युक्त उन पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं वहन करता हूँ।

वस्तुतः भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के माध्यम से मानवमात्र को पूर्ण आश्वासन और सन्देश दे रहे हैं कि जो भी मनुष्य अनन्यभाव से भगवान का स्मरण करता है, भगवान् उसकी रक्षा स्वयं करते हैं।

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धना।

अन्योन्यबन्धनावेथौ विनान्योनलयं न सिद्धयतः ll

अर्थात् धन कमाने के लिए सहायक की आवश्यकता पड़ती है और सहायक को धन मिलने की आशा होती है, इस तरह दोनों एक दूसरे पर आश्रित रहते हैं। इनके सहयोग के बिना सफलता नहीं मिलती।

2.4 आदर्श स्थापित करने का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार अगर प्रबन्धक स्वयं आदर्श स्थापित नहीं करता है एवं अपने अधीनस्थ कर्मचारियों से त्रुटिरहित कार्य की अपेक्षा रखता है तो प्रबन्धक अपने अभियान में सफल नहीं हो सकता है। वस्तुतः मनुष्यों में समस्याओं के समाधान की अद्भुत क्षमता विद्यमान रहती है। यह क्षमता तभी प्रकाशित होती है जब उसे महान् आदर्शोन्मुखी वातावरण मिले। आदर्श ही आशा है। अतः प्रबन्धक के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने अधीनस्थों के लिए अच्छी कार्य संस्कृति का आदर्श प्रस्तुत करे। श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करता है, अन्य पुरुष भी उसका ही आचरण करते हैं। वह जो कुछ प्रमाण मानकर आचरण करता है, संसार के लोग भी उसी का अनुसरण करते हैं

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।

जीवमात्र के कल्याण में रत होकर, अपने चिन्तन, मनन एवं कर्म के द्वारा संसार के मनुष्यों के लिए एक आदर्श स्थापित करने वाला पुरुष श्रेष्ठ होता है। महान् आदर्श महान् मस्तिष्क का निर्माण करते हैं। प्रमुख लोग जैसा आचरण करते हैं साधारण लोग भी वैसा ही करते हैं–**यद् यच्छीर्षण्याचरितं तं तत्तदनुवर्तते लोकः।**

2.5 योग्यता का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्धक को चाहिए कि वह कार्य पर लगाए जाने वाले लोगों की योग्यता को भली–भाँति समझकर कार्य पर लगावे। ऐसा करने पर सफलता उसके कदम चूमेगी। इसी का सङ्केत महाभारत के शान्तिपर्व में प्राप्त होता है

अनुरूपाणि कर्माणि भृत्येभ्यो यः प्रयच्छति।
स भृत्यगुणसम्पन्नो राजा फलमुपाश्नुते॥

इस उद्धरण से यह निष्कर्ष सहज रूप से निकाला जा सकता है कि अगर प्रबन्धक अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की योग्यता को जानकर उसके अनुसार कार्य सौंपता है, तो सम्बन्धित कर्मचारी गुणों से युक्त होकर उत्साहपूर्वक कार्य करता है। ऐसा करके कर्मचारी अपना अधिकतम देने का प्रयास करता है। इस प्रकार की स्थिति महान् फलदायी होती है।

महाभारत का पुनः कथन है कि कर्मचारियों को उनके योग्य कर्म में ही लगाना चाहिए। कर्मफल की इच्छा रखने वाले को चाहिए कि वह अपने कर्मचारियों को ऐसे कार्यों में न नियुक्त करे, जो उनकी योग्यता और मर्यादा के प्रतिकूल पड़ते हों

कर्मस्विहानुरूपेषु न्यस्या भृत्या यथाविधिः।
प्रतिलोमं न भृत्यास्ते स्थाप्या कर्मफलैषिणा॥

आगे कहा गया है कि साधु, कुलीन, शूरवीर, ज्ञानी, अदोषदर्शी, अच्छे स्वभाव वाले, पवित्र और कार्य दक्ष मनुष्यों को ही कर्मचारियों के रूप में नियुक्त करना चाहिए। इसके अतिरिक्त जो विनीत, कार्यपरायण, शान्तस्वभाव, चतुर, स्वाभाविक, शुभ गुणों से सम्पन्न तथा अपने–अपने पद पर निन्दा से रहित हों, वे ही कर्मचारी बनने की अर्हता रखते हैं

साधवः कुलजाः शूरा ज्ञानवन्तोऽनसूयकाः।
अक्षुद्राः शुचयो दक्षाः स्युनरा पारिपार्श्वकाः॥
न्यग्भूतास्तत्पराः शान्ताश्चौक्षा प्रकृतिजैः शुभाः।
स्वस्थानानपक्रुष्टा ये ते स्यु राज्ञां बहिश्चराः॥

बुद्धिमान् प्रबन्धक को चाहिए कि वह पहले अपने कर्मचारियों की सच्चाई, शुद्धता, सरलता, स्वभाव, शास्त्रज्ञान, सदाचार, कुलीनता, जितेन्द्रियता, दया, बल, पराक्रम, प्रभाव, विनय तथा क्षमा का पता लगाकर जो कर्मचारी जिस कार्य में योग्य जान पड़े, उन्हें उसमें ही लगावे और उनकी रक्षा कर पूरा–पूरा प्रबन्ध कर दे।

एवं राज्ञा मतिमता विदित्वा सत्यशौचताम्।
आर्जवं प्रकृतिं सत्यं श्रुतं वृत्तं कुलं दमम्।।
अनुक्रोशं बलं वीर्यं प्रभावं प्रश्रयं क्षमाम्।
भृत्या ये यत्र योग्याः स्युस्तत्र स्थाप्यारू सुरक्षिताः॥

2.6 विश्वासाविश्वास का सिद्धान्त

प्रबन्धक को सर्वतोभावेन सफलता प्राप्त करने के लिए उसे इस सिद्धान्त का अवलम्बन करना चाहिए। इस सिद्धान्त

के अनुसार न तो किसी पर अन्धविश्वास करना चाहिए और न पूर्ण विश्वास ही करना चाहिए। उसे हंस की तरह नीर–क्षीर विवेकी होना चाहिए। महाभारत का कथन है कि किसी पर भी किया हुआ अत्यन्त विश्वास धर्म और अर्थ दोनों का नाश करने वाला होता है और सर्वत्र अविश्वास करना भी मृत्यु से बढ़कर है–

एकान्तेन हि विश्वासो कृत्स्नो धर्मार्थनाशकः।
अविश्वासश्च सर्वत्र मृत्युना न विशिष्यते॥

दूसरों पर किया हुआ पूरा–पूरा विश्वास अकालमृत्यु के समान है, क्योंकि अधिक विश्वास करने वाला मनुष्य भारी विपत्ति में पड़ जाता है। वह जिस पर विश्वास करता है, उसी की इच्छा पर उसका जीवन निर्भर हो जाता है–

अकालमृत्युर्विश्वासो विश्वसन् हि विपद्यते।
यस्मिन् करोति विश्वासमिच्छतस्तस्य जीवति॥

इसलिए प्रबन्धक को चाहिए कि वह कुछ चुने हुए लोगों पर विश्वास करे, पर उनकी ओर से सशक भी रहे। यही सनातन नीति की गति है

तस्माद् विश्वसितव्यं च शङ्कितव्यं च केषुचित्।
एपा नीतिगतिस्तात लक्ष्या चौव सनातनी॥

2.7 स्वाभाविक कर्म का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार प्रबन्धक को चाहिए कि वह अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के स्वाभाविक कर्म को भली–भाँति जानकर तदनुरूप कार्य में लगाए। ऐसा प्रयास महान् फलदायी होता है। यह कहने में किञ्चित् भी विचिकित्सा नहीं है कि स्वाभाविक कार्य के प्रति व्यक्ति दत्तचित्त रहता है। वहीं दूसरी ओर, थोपे गए कार्य को हैं और केवल कठोर व्यवहार करने से भी सब लोग उद्विग्न हो उठते हैं। अतः आवश्यकतानुसार कठोरता और कोमलता दोनों का अवलम्बन करना चाहिए–

मृदुर्हि राजा सततं लङ्घयो भवति सर्वशः।
तीक्ष्णाच्चोद्विजते लोकस्तस्मादुभयमाश्रय॥

3.3 परीक्षण

भली–भाँति चीजों का परीक्षण करके कार्य करना चाहिए। परीक्षा करके कार्य करने वाला प्रबन्धक भावी घटनाओं एवं स्थितियों का आकलन करने में भी सफल होता है। इसीलिए महाभारत का कथन है कि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाली वस्तु को भी परीक्षा करनी उचित है। जो परीक्षा लेकर भली–भाँति भले बुरे की जाँच करके किसी कार्य को करने के लिए आज्ञा देता है, उसे पीछे पछताना नहीं पड़ता है

तस्मात् प्रत्यक्षदृष्टोऽपि युक्तो ह्यर्थः परीक्षितुम्।
परीक्ष्य ज्ञापयन्नर्थान्न पश्चात् परितप्यते॥

3.4 न्याय

न्याय की धारणा किसी संस्थान को क्रम और नियन्त्रण में रखने वाली आन्तरिक श्रृंखला है। न्याय शक्ति का जनक होता है। न्याय लोगों को कर्तव्य पालन करने का साहस प्रदान करता है। अतः प्रबन्धक का एक महत्त्वपूर्ण कार्य

संस्थान में न्यायपूर्ण स्थितियाँ उत्पन्न करना है। प्रबन्धक का यह दायित्व है कि वह अपराध की अच्छी तरह जाँच किए बिना ही किसी को दण्ड न दे–**नापरीक्ष्य नयेद्दण्डम्**। जो दूसरों के मिथ्या कलङ्क लगाने पर किसी निर्दोष को भी दण्ड देता है, वह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है

दुषितं परदोषैर्हि गृह्णीते योऽन्यथा शुचिम्।
स्वयं संदूषितामात्यः क्षिप्रमेव विनश्यति ॥

जो भली–भाँति विचार करके अपराधी को उचित दण्ड देता है और अपने कर्तव्यपालन के लिए सदा तत्पर रहता है, उसको वध और बन्धन का पाप नहीं लगता, अपितु वही उसका सनातन धर्म है

सम्यक् प्रणयतो दण्डं भूमिपस्य विशाम्यते।

युक्तस्य वा नास्त्यधर्मो धर्म एव हि शाश्वतः ॥

3. प्रबन्धन के कार्य

3.1 अभिप्रेरण

प्रबन्धन के अन्तर्गत यह प्रबन्धक का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसी का आशय लेकर वह अपने अधीनस्थ लोगों का उत्साहवर्धन कर सफलता के नए अध्याय खोल सकता है। महाभारत में अभिप्रेरण के महत्त्व को बारम्बार स्वीकार किया है और इसके अभ्यास पर बल दिया गया है। महाभारत का वचन है कि जब कोई अभीष्ट कार्य पूरा हो जाए तो उसमें सहयोग करने वालों का बहुत से धन, यथायोग्य पुरस्कार तथा नाना प्रकार से सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन के द्वारा सत्कार करना चाहिए

कृते कर्मणि राजेन्द्र पूजयेद् धनसञ्चयैः।

दानेन च यथार्हेण सान्त्वेन विविधेन च ॥

अपने अधीनस्थ कर्मचारी को हमेशा यह समझाना चाहिए कि यदि आरम्भ किया हुआ कार्य पूरा न हो सके अथवा उसमें बाधा पड़ जाए तो इसके लिए तुम्हें अपने मन में दुःख नहीं मानना चाहिए बल्कि सदा अपने आपको पुरुषार्थ में ही लगाए रखना चाहिए

विपन्ने च समारम्भे संतापं मा स्म वै कृथाः।
घटस्वैव सदाऽऽत्मानं राज्ञामेष परो नयः।।

वस्तुतः जो अपने कर्मचारियों का पुण्यकर्म देखकर तथा उनकी सुन्दर वाणी सुनकर उन सबका यथायोग्य सम्मान करता है वह परम उत्तम धर्म को प्राप्त कर लेता है।

अर्थमानार्घ्यसत्कारैर्भोगैरुच्चावचैः प्रियान्।

यानर्थभाजो मन्येथास्ते ते स्युः सुखभागिनः ॥

3.2 नियन्त्रण

प्रबन्धक को चाहिए कि वह चीजों को अनियन्त्रित न छोड़े। स्थितियों पर नियन्त्रण रखना उसका महत्त्वपूर्ण कार्य है। नियन्त्रण के क्रम में उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि न तो उसके निर्देशों का उलङ्घन हो और न ही

उसके अधीनस्थ व्यक्ति उसके व्यवहार से उद्विग्न हों। महाभारत का वचन है कि जो नियन्त्रक सब प्रकार से कोमलतापूर्ण व्यवहार करने वाला ही होता है उसकी आज्ञा का लोग उल्लङ्घन कर जाते

4. प्रबन्धन की विविध शाखाएं

अद्यावधि प्रबन्धन की अनेक शाखाओं का विकास हो चुका है। इनमें प्रमुख हैं वित्तीय प्रबन्धन, मानवसंसाधन प्रबन्धन, मानसिक प्रबन्धन, पर्यावरण प्रबन्धन, सामाजिक प्रबन्धन, पारिवारिक प्रबन्धन, प्रशासनिक प्रबन्धन, शैक्षिक प्रबन्धन, चिकित्सकीय प्रबन्धन आदि। इनका क्षेत्र इतना व्यापक है कि सबकी चर्चा एक शोध आलेख में नहीं की जा सकती है। यहाँ पर वित्तीय प्रबन्धन, मानवसंसाधन प्रबन्धन और मानसिक प्रबन्धन की ही चर्चा की जा रही है

4.1 वित्तीय प्रबन्धन

प्रबन्धक को पूरा प्रयत्न करके निरन्तर अपने कोश की रक्षा करनी चाहिए क्योंकि कोश ही उनकी जड़ है, कोश ही उन्हें आगे बढ़ाने वाला होता है–

कोशश्च सततं रक्ष्यो यत्नमास्थाय राजभिः।

कोशमूला हि राजानः कोशो वृद्धिकरो भवेत्॥

अगर इह लोक और परलोक दोनों में सुखपूर्वक रहना है तो प्राप्त हुए धन के उपयोग में पर्याप्त सावधानी बरतनी चाहिए। प्राप्त हुए धन का उपयोग करने में दो प्रकार की भूलें हुआ करती हैं, जिन्हें ध्यान में रखना चाहिए। पहली भूल है अपात्र को धन देना और दूसरी है सुपात्र को धन न देना

लब्धानामपि वित्तानां बोद्धव्यो द्वावतिक्रमौ।

अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्तिपादनम्।

प्रबन्धक को कर्मचारियों की आवश्यकताओं को हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। यदि कोई प्रबन्धक दीनतापूर्वक याचना करते हुए कर्मचारियों की उस प्रार्थना को ठुकराकर स्वेच्छा से अथवा धन के लोभवश कोई–न–कोई युक्ति करके उनके धन का अपहरण कर ले तो वह उसके महान् विनाश का सूचक होता है

यदा युक्त्या नयेदर्थान् कामदर्थवशेन वा।
कृपणं याचमानानां तद् राज्ञो वैशसं महत्॥

अधिक धनार्जन हो और जीवन में कष्ट भी न हो, इसके लिए भी महाभारत में युक्ति सुझाई गई है। इसके अनुसार जो व्यक्ति खूब धन कमाना चाहे तो उसे शुरु से ही धर्म का आचरण करना चाहिए क्योंकि धर्म से अर्थ उसी प्रकार अलग नहीं होताजैसा स्वर्ग से अमृत अलग नहीं होता–

जो चोर नहीं है. उसको चोर कह देने से मनुष्य को चोर से दुगना पाप लगता है– **अस्तेन स्तेन इत्युक्त्वा द्विगुणं पापमाप्नुयात्।**

धर्म के अनुसार न्याय–अन्याय का विचार करके ही दण्ड का विधान करना चाहिए। मानमानी नहीं करनी चाहिए–**विभज्य दण्डः कर्तव्यो धर्मेण न यदृच्छया।**

3.5 अपने–पराए की पहचान

अपने–पराए की पहचान प्रबन्धक को अपनी नीतियाँ बनाने एवं उस पर अमल करने में सहायक होंगे। अतरू महाभारत का कथन है कि प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम–इन प्रमाणों द्वारा सदा अपने–पराए की पहचान करते रहना चाहिए

प्रत्यक्षेणानुमानेन तथौपम्यागमैरपि।
परीक्ष्यास्ते महाराज स्वे परे चौव नित्यशः॥

न कभी कोई शत्रु होता है और न मित्र होता है। आवश्यक शक्ति के सम्बन्ध से लोग एक दूसरे के मित्र और शत्रु हुआ करते हैं–

नास्ति जातु रिपुर्नाम मित्रं नाम न विद्यते।
सामर्थ्ययोगाज्जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा॥

मैत्री कोई स्थिर वस्तु नहीं है और शत्रुता भी सदा स्थिर रहने वाली चीज नहीं है। स्वार्थ के सम्बन्ध से मित्र और शत्रु होते रहते हैं

नास्ति मैत्री स्थिरा नाम न च ध्रुवमसौहृदम्।

अर्थयुक्त्यानुजायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।।

3.6 सन्तुलित व्यवहार

प्रबन्धक को सन्तुलित आचरण के अमल पर बल देना चाहिए। जैसे वसन्त ऋतु का तेजस्वी सूर्य न तो अधिक ठंडक पहुँचाता है और न कड़ी धूप ही करता है, उसी प्रकार प्रबन्धक को भी न तो बहुत कोमल होना चाहिए न अधिक कठोर ही

तस्मान्नैव मृदुर्नित्यं तीक्ष्णो नैव भवेन्नृपः।

वासन्तार्क इव श्रीमान् न शीतो न घर्मदः॥

महाभारत में प्रबन्धन के तत्त्व । एक अनुशीलन अपने–अपने व्यापार में सम्यक्तया संलग्न होती हैं। इसे सर्वेन्द्रियवृत्तिदीपिका भी कहा जाता है। वाल्मीकिरामायण में भी भगवान् हनुमान् द्वारा इस बात का सङ्केत किया है कि इन्द्रियों के शुभ और अशुभ कर्म में प्रवृत्त होने का कारण मन ही है। यदि मन स्वस्थ है तो अच्छी भावनाओं का जन्म होता है, परन्तु यदि मन दृषित है तो बुरी भावनाएं पैदा होती हैं। यदि मन स्थिर और दृढप्रतिज्ञ है तो उसमें किसी प्रकार का मानसिक विकार उत्पन्न नहीं होता और न ही मोह माया सुख–दुःख आदि उसे प्रभावित करते हैं। ऐसा मन शोक, चिन्ता आदि मानसिक विकारों अथवा उन्माद आदि दोषों से भी ग्रसित नहीं होता है। इसलिए मन के प्रबन्धन का सर्वत्र बल दिया गया है और महाभारत तो इसमें अद्वितीय है। इसके अनुसार सबसे पहले सदा अपने मन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए, उसके बाद शत्रुओं को जीतने की चेष्टा करनी चाहिए। जिस राजा ने अपने मन को नहीं जीता, वह शत्रुओं पर विजय कैसे प्राप्त कर सकता है।

अर्थसिद्धिं परामिच्छन धर्ममेवादितश्चरेम्।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम्।।

धन को बढ़ाने वाले आठ गुणों की चर्चा भी महाभारत में प्राप्त होती है। इसके अनुसार धारणाशक्ति, चतुराई, संयम, बुद्धिमत्ता, अपना शरीर, धैर्य, वीरता, देश और काल की परिस्थिति की जानकारी ये थोड़े या बहुत आठ गुण धन को

बढ़ाते हैं

धृतिर्दाक्ष्यं संयमो बुद्धिरात्मा धैर्य शौर्य देशकालाप्रमादाः।
अल्पस्य वा बहुर्नो वा विवृद्धौ धनस्यैतान्यष्ट समिन्धनानि।।

कोई भी निन्दनीय काम करके मनुष्य को अपने धन आदि को नहीं बढ़ाना चाहिए क्योंकि इस रीति से प्राप्त धन चिरस्थायी नहीं होता एवं अल्प काल में हि समाप्त हो जाता है– **न तु बुद्धिमिहान्विच्छेत् कर्म कृत्वा जुगुप्सितम्।**

4.2 मानवसंसाधन प्रबन्धन

मानव संसाधन प्रबंधन का लक्ष्य किसी प्रतिष्ठान के प्रति कर्मचारियों को आकर्षित करने, उन्हें बरकरार रखने और उनके प्रभावी ढंग से प्रबंधन के कौशलगत लक्ष्यों को पूरा करने में मदद करना है। महाभारत में उन तत्त्वों की चर्चा की गई है जिसका आश्रय लेकर मनुष्य सफलतापूर्वक अपना कार्य सम्पादित कर सकता है। इसके अनुसार विद्या, शूरवीरता, दक्षता, बल और पाँचवा धैर्य–ये पाँच मनुष्य के स्वाभाविक मित्र बताए गए हैं। विद्वान् पुरुष इनके द्वारा ही इस जगत् में सारे कार्य करते हैं

विद्या शौर्यं च दाक्ष्यं च बलं धैर्यं च पञ्चमम्।
मित्राणि सहजान्याहुवर्तयन्तीह तैर्बुधाः॥

बुद्धिमान के पास थोड़ा सा धन हो तो वह भी सदा बढ़ता रहता है। वह दक्षतापूर्वक काम करते हुए संयम के द्वारा प्रतिष्ठित होता है

नित्यं बुद्धिमतोऽप्यर्थः स्वल्पकोऽपि विवर्धते।
दाक्ष्येण कुर्वतः कर्म संयमात् प्रतिष्ठिति॥

4.3 मानसिक प्रबन्धन

मनुष्य के समग्र शारीरिक व्यापार को सुचारु रूप से चलाने वाली एकादश इन्द्रियसनात में मन सर्वोपरि है, क्योंकि शेष सभी इन्द्रियाँ इसी मन से आदिष्ट होकर

आत्मा जेयाः सदा राज्ञा ततो जेयाश्च शत्रवः।
अजितात्मा नरपतिर्विजयेत् कथं रिपून्॥

गीता के छठे अध्याय में मन को शरीरस्थ मित्र और शत्रु की संज्ञा दी गई है। मनुष्य का मन यदि शान्त स्थिर है, वश में है तो वह मित्रवत् कार्य में प्रवृत्त होगा, परन्तु यदि मन अशान्त है, अस्थिर है, इन्द्रियों सहित अपने नियन्त्रण में नहीं है तो वह शत्रुवत् व्यवहार करता है। अतः कहा गया है कि मन को एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में रखकर अपने अन्तःकरण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करना चाहिए।

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यत्चित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने युज्याद्योगमात्मविशुद्धये॥

5. प्रबन्धक के गुण

प्रबन्धक को धीर, क्षमाशील, पवित्र, समय–समय पर तीक्ष्ण, पुरुषार्थ को जानने वाला, सुनने को उत्सुक, वेदज्ञ, श्रवण परायण तथा तर्क, वितर्क में कुशल होना चाहिए। उसे मेधावी, धारणा शक्ति से सम्पन्न, यथोचित कार्य करने वाला,

इन्द्रिय संयमी, प्रियवचन बोलने वाला तथा शत्रु को भी क्षमा प्रदान करने वाला होना चाहिए। उसको दान कि परम्परा का कभी उच्छेद न करने वाला, श्रद्धालु, दर्शनमात्र से सुख देने वाला, दीन–दुरूखियों को सदा सहारा देने वाला, विश्वसनीय मित्रों से युक्त तथा नीतिपरायण होना चाहिए। वह अहंकार छोड़ दे, द्वन्द्वों से प्रभावित न हो, जो ही मन में आवे वही करने होता। सात्त्विक कता विघ्न–बाधाओं से विचलित नहीं होता तथा पर्वत की भाँति अडिग रहकर भीषण परिस्थितियों में भी प्रसन्न रहता है। वह लाभ–हानि, जय–पराजय, सफलता–असफलता, मान–अपमान इत्यादि द्वन्द्वों में सम स्थिर और शान्त रहता है। विषम परिस्थितियाँ और भीषण संकट उसके असीम धैर्य और अदम्य उत्साह के सामने घुटने टेक देते हैं तथा अन्ततोगत्वा सफलता उसका चरण–चुम्बन करती है

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।

शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च लक्ष्मी स्वयं याति निवासहेतोः।।

6. प्रबन्धक के प्रकार

6.1 उत्तम (सात्त्विक) प्रबन्धक

जो कर्ता आसक्तिरहित एवं अहंकाररहित है, धैर्य एवं उत्साह से युक्त है, सफलता एवं विफलता में हर्षशोकादि विकारों से मुक्त रहता है, वह सात्त्विक कर्ता (उत्तम प्रबन्धक) कहा जाता है

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।

सिद्ध्यसिद्धोर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।

वस्तुतः सात्त्विककर्ता श्रेष्ठ होता है तथा वह जनमानस के कल्याण का अग्रदूत होता है। थोड़े से ही सात्त्विककर्ता जनसमाज के आदर्श प्रेरक होकर जनकल्याण का मार्ग प्रशस्त कर देते हैं तथा जन–वन्दनीय होते हैं। आसक्तिरहित सात्त्विक कर्ता निष्काम होकर कर्तव्य–कर्म कर सकता है। वह कर्मफल की इच्छा का त्यागकर मन को चिन्ता, भय, तनाव से युक्त रख सकता है तथा विषम परिस्थिति में भी स्थिर, सम और शान्त रह सकता है। सात्त्विक कर्ता अहंकारहित एवं विनम्र होता है। वह अपनी सफलता का श्रेय दूसरों को देता है तथा उसे प्रभु का प्रसाद मानता है। सात्त्विक कर्ता धैर्य और उत्साह से परिपूर्ण होता है। उसकी शक्ति, साहस और दृढ़ता का अक्षय स्रोत उसके भीतर होता है तथा भौतिक पदार्थों और बलशाली पुरुषों से सहयोग लेकर भी उन पर निर्भर नहीं

6.2 मध्यम (राजसिक) प्रबन्धक–

जो कर्ता आसक्ति से युक्त, कर्मों के फल को चाहने वाला और लोभी है तथा दूसरों को कष्ट देने का स्वभाव वाला, अशुद्धाचारी और हर्प शोक से लिप्त है वह राजस कर्ता (मध्यम प्रबन्धक) कहा गया है

रागी कर्मफलप्रेप्सुलुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।

हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः।।

वस्तुतः राजस अथवा रजोगुणप्रधान कर्ता अनेक व्यक्तियों तथा वस्तुओं में ममत्व होने के कारण आसक्त होते हैं तथा वे समस्त कार्य सकाम होकर अर्थात् स्वार्थ–बुद्धि से हि करते हैं। उनकी बुद्धि और मन कामनाग्रस्त अर्थात् स्वार्थरत होने के कारण दूषित और दुर्बल तथा अस्थिर और असन्तुलित रहती हैं। वे प्रचुर धन–सम्पदा और पद–प्रतिष्ठा पाकर भी जीवन में कभी शान्ति प्राप्त नहीं करते। राजस कर्ता भौतिक सुखभोग को जीवन का लक्ष्य मानकर सांसारिक कामनाओं एवं स्वार्थों की पूर्ति के लिए सदैव भटकता रहता है तथा कभी अनुकूल फल पाकर हर्षित होता

है और कभी प्रतिकूल फलप्राप्ति से व्याकुल होता है। राग–द्वेष के कारण वह कभी सन्तुलित, स्थिर, सम तथा शान्त नहीं रहता तथा सांसारिक भोगों की मृग–मरीचिका के पीछे दौड़ते हुए भी जीवन को खो देता है।

6.3 अधम (तामसिक) प्रबन्धक

जो कर्ता अयुक्त, शिक्षा से रहित, घमण्डी, धूर्त और दूसरों की जीविका का नाश करने वाला तथा शोक करने वाला आलसी और दीर्घसूत्री है, वह तामस कर्ता कहलाता

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठोनैष्कृतिकोऽलसः।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते।।

***व्याख्याता**
ज्योतिष शास्त्र
राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय
नीम का थाना (सीकर) राजस्थान

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. शास्त्री राम नारायण (अनुवादक) वेदव्यासकृत महाभारत, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत् 2065, आदिपर्व, 62.53
2. तत्रैव, अनुशासनपर्व, 54.9
3. तत्रैव, शान्तिपर्व, 293.8
4. तत्रैव, उद्योगपर्व, 72.23–24
5. तत्रैव, शान्तिपर्व, 8.18
6. तत्रैव, स्वर्गारोहण, 5.63
7. शिवानन्द, गीतारसामृत, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2991, 5.28
8. महाभारत, वनपर्व, 150.45
9. तत्रैव, उद्योगपूर्व, 33.69
10. तत्रैव, शान्तिपूर्व, 158.29
11. गीतारसामृत, 9.29
12. तत्रैव,–26.50
13. महाभारत, शान्तिपर्व, 69.27
14. गीतारसामृत–4.11